सच्ची गीता की आलोचना

लेखक—

पं० देवदत्त शास्त्री "विद्यानिधि" केसरी वाले
प्रौ० दी० कृ० कि० स० ध० संस्कृत कालेज (लाहौर)
अम्बाला छावनी।

प्रकाशक

...ी निरोध समिति

अम्बाला छावनी।

अक्टूबर, १९६२, १००० प्रतियां मूल्य १० नये पैसे

कर प्रामाणिक श्री मदभगवद्गीता को मिथ्या सिद्ध करने का

प्रकाशक का निवेदन

श्री पंडित देवदत्त जी शास्त्री विद्यानिधि प्रो० सनातन धर्म संस्कृत कालिज से ब्रह्माकुमारी मत के सम्बन्ध में बातचीत करते हुए मैंने उनकी सेवा में 'सच्ची गीता' की एक पुस्तक भेंट करके निवेदन किया कि विद्वानों की ओर से जनता में जागृति पैदा करने पर ही इस अवैदिक प्रचार की समाप्ति हो सकती है। मुझे बड़ा हर्ष है कि उन्होंने मेरी तुच्छ प्रार्थना स्वीकार करके एक उत्तम समालोचना लिख कर दी। यद्यपि एक दो स्थानों पर वैदिकसिद्धान्तों से थोड़ा सा मतभेद है परन्तु जिस उद्देश्य से यह समालोचना लिखी गई है अर्थात् ब्रह्मकुमारीमत खंडन उस की पूर्ति में कोई कमी नहीं है। यदि हमें इसी प्रकार विद्वानों का सहयोग प्राप्त होता रहा तो हमें बहुत शीघ्र कार्य में सफलता प्राप्ति की आशा करनी चाहिए।

कई विद्वानों ने इस पुस्तिका की स[illegible] से केवल दो की सम्मति नीचे दी जाती [illegible]

१. सनातन धर्म जगत के सन्यासि[illegible] शास्त्र-निष्णात श्री स्वामी सोमेश्वरानन्द जी महाराज कनखल (हरिद्वार)—यह सच्ची गीता की आलोचना अतीव सुन्दर है इसके पढ़ने मात्र से सर्वसाधारण जनता का हित होगा क्योंकि आज स्वार्थ परायण मनुष्य ईश्वर विमुख होकर स्वयं ईश्वर बन कर प्रामाणिक श्री मदभगवद्गीता को मिथ्या सिद्ध करने का

दुस्साहस कर रहा। है जैसे वर्तमान के भगवान् दादा लेखराज ने 'सच्ची गीता' लिखकर जनता को धोखा दिया है। अतः मेरी धर्मानुरागी जनता से विनम्र प्रार्थना है कि हम आप सब मिलकर सत्य का पक्ष लें।

२. श्री पंडित मुनीश्वर देव जी सिद्धान्त शिरोमणि महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब—लेखक का प्रयत्न प्रशंसनीय है। विवेचन युक्तियुक्त है। इसके प्रकाशन से सर्व-साधारण को लाभ ही होगा।

इस पुस्तिका के प्रकाशन में स्थानीय सनातन धर्म सभा ने जो आर्थिक सहायता की है उसके लिए सभा का तथा विद्वान

लेखक का समिति की ओर से मैं बड़ा आभारी हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में भी सनातन धर्म जगत् की ओर से इसी प्रकार का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

निवेदक
चिरंजीव लाल गुप्त
मंत्री ब्रह्माकुमारी निरोध समिति

आर्य भवन,
अम्बाला छावनी ३०-६-६२

श्रीपरमात्मने नमः

धर्म का लक्षण शास्त्र में बहुत स्थानों में मिलता है। व्याकरण की दृष्टि से धृञ् धातु से धर्म शब्द का व्युत्पादन कई आचार्य करते हैं। धरतीति धर्मः अथवा ध्रियते इति धर्मः एवञ्च ध्रियमाणः सन् धरतीति धर्मः यह धर्म शब्द की व्युत्पत्ति है। अर्थात् जो धारण करने पर धारण करता है उसे धर्म कहते हैं। वैशेषिक दर्शनकार ने कहा है, 'यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः" जिस से इस लोक तथा परलोक में सिद्धि हो वह धर्म है। मीमांसादर्शन में 'चोदनः लक्षणोऽर्थो धर्मः' वेद जिस में प्रमाण है वह अर्थ धर्म है। इस प्रकार इस लोक तथा परलोक में उन्नति जिस से हो वह धर्म है। कुछ समय से लोग धर्म की आड़ में शिकार खेल रहे हैं। अर्थ का अनर्थ करके लोगों को धोखे में डाल कर स्वयं मौज उड़ाते हैं। अब भी इसी किसम का एक मत चल रहा है। जिस का नाम आदि सनातन देवी-देवता धर्म है। मुझे तो इसे पढ़ कर हंसी आती है, कि आदि और सनातन यह शब्द किस प्रकार मेल खाते हैं। सनातन यह शब्द नित्य होने वाला इस अर्थ का बोधक है। सना अव्यय नित्य अर्थ में हैं उसी से "सायं चिरं प्राह्णे" इत्यादि सूत्र से टयु प्रत्यय और तुट् का आगम हो कर बना है। नित्य होने वाली वस्तु का आदि नहीं होता। नित्य होने वाली वस्तु आदि मध्य अन्त इन तीनों से भिन्न होती है। इस लिये यह नाम करण ही अशुद्ध है। जब मूलाधार ही ठीक नहीं तो शेष सारे कार्य में गड़बड़ समझिये। कोई भी इस मत का अनुयायी क्या यह समर्थन कर सकता है कि यहां आदि पद का क्या अभिप्राय है। यदि दो सनातन हैं एक पहला दूसरा बाद का तो इसे आदिम सनातन कहना चाहिये। केवल इस मत का ग्रन्थ जिस

का नाम "सच्ची गीता" है उस में इतना है लिखा है कि इस धर्म पर चलने वाले देवी देवता बन जाते हैं। आदि तथा सनातन का कोई विचार नहीं किया! इस मत के अनुयायी यदि हिम्मत रखते हैं तो समाधान करें।

"भगवान् भारत में क्यों आता है।"

इस बात को सिद्ध करने के लिये इस मत के प्रवर्तक लेखराज जी प्रमाण देते हैं।

"तभी तो गीता में मेरे महावाक्य हैं जब २ धर्म की ग्लानि होती है तब २ मैं भारत में अवतरित होता हूं"। सच्ची गीता पृष्ठ ७४ पर

आलोचना—देखिये कितनी अज्ञानता है जिस श्लोक का यह अर्थ दिखाया है वह श्लोक इस प्रकार है।

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्"॥

इस श्लोक में भारत यह सम्बोधन है। जिस को दादा जी ने सप्तम्यन्त बना दिया। कितना विशाल ज्ञान है। यह मनमानी कल्पना है। निःसन्देह आपके ये विचार कि भारत अत्युत्तम देश है। इस से हम सहमत हैं परन्तु श्लोक का अर्थ वैसा नहीं जैसा आप लगाते हैं। एक और आप का गपौड़ा सुनिये—

"श्री मद्भगवद्गीता में बताया है कि गीता के भगवान् का जन्म रात्रि के घोर अन्धकारमय समय जब कि सभी सो रहे थे तब हुआ।" **सच्ची गीता पृष्ठ ११२**

आलोचना—इन आप के शब्दों को पढ़ कर तो यह प्रतीत होता है कि आप ने जन्म में एक बार भी सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता को नहीं

देखा। कितना आंखो में धूल डालने का यत्न किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता के किसी पद्य का भी ऐसा अर्थ नहीं जैसा कि ऊपर कहा गया है। यह तो एक ऐसी बात हुई कि जो मुंह में आया सो कह डाला "बाबावाक्यं प्रमाणम्" जैसा दादा जी ने कहा सतवचन चाहे वह वस्तु कहीं वर्णित हो या न हो। यह अत्यन्त सफेद झूठ है कि गीता में भगवान् का जन्म घोर अन्धकार समय में हुआ। और देखिये कि तर्कशास्त्र से कितने अनभिज्ञ हैं। आप का सिद्धान्त है कि "परमात्मा सर्वव्यापक नहीं माया सर्वव्यापक है" परमात्मा तो क्या आत्मा को भी गीता में व्यापक बताया गया है। आत्मा की व्यापकता में हम प्रमाण देंगे उस से पूर्व कुछ और पकड़ करते हैं। हमारे सिद्धान्त के अनुसार माया प्रकृति हैं और परमात्मा मायी है। जैसा कहा है—

"मायां तु प्रकृतिं विद्यात मायिनं तु महेश्वरम्"

यदि यह आप भी माने तो कहिये माया जो शक्ति है वह व्यापक हो और मायी सर्वव्यापक न हो तो वह शक्ति शक्ति वाले के बिना कैसे रहेगी। शक्ति और शक्तिमान् का अभेद होता है। किसी बलवान् की की शक्ति को कोई भी पृथक् करके नहीं दिखा सकता। माया यदि व्यापक है तो परमात्मा को पहले व्यापक मानना पड़ेगा। अस्तु आप माया का निर्वचन कुछ और ही करते हैं। एक स्थान में पाञ्चभूत माया हैं। सच्ची गीता पृष्ठ ७८। दूसरे स्थान पर "काम क्रोधादि मनोविकारों को माया कहते हैं।" सच्ची गीता पृष्ठ ६५

देखिये कितना पूर्वापर विरोध है काम क्रोधादि मनोविकार चेतन में है उस से पूर्व पाञ्च भूत अर्थात् पृथिवी जल तेज़ वायु आकाश इनको आप माया बताते हैं। और काम क्रोधादि मनोविकार माया हैं। इस सिद्धान्त को आपने मानते हुए माया सर्वव्यापक है यह कैसे स्थिर

किया। जिन चेतनों में काम क्रोधादि मनोविकार हैं वहीं माया होगी। मिट्टी पत्थर आदि जहां मन का अभाव है वहां माया कैसे रही। सब स्थानों में जो हो उसे ही व्यापक कह सकते हैं। अब आत्मा के व्यापक होने में प्रमाण देखिये।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥

॥ श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक २४ ॥

इस श्लोक में आत्मा सर्वगत है। अर्थात् व्यापक है। परमात्मा सर्वव्यापक है यह तो श्रीमद्भगवद्गीता में बहुत ही पाया जाता है जैसे—

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥

॥ श्री मद्भगवद्गीता अ० १२ श्लोक ३ ॥

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥

॥ श्री मद्भगद्गीता अ० १३ श्लोक २८ ॥

सर्वस्य चाहं हृदि संविष्टो।
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो।
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥

॥ श्री मद्भगवद्गीता अ० १५ श्लोक १५ ॥

पूर्व के पद्य में "सर्वत्रगम्" यह पद परमात्मा को सर्वव्यापक सिद्ध करता है। सर्वत्र गच्छति सर्वत्रगः अर्थात् सब जगह होने वाला।

दूसरे पद्य में "सर्वत्र समवस्थितम्" सब जगह स्थित को, यह अर्थ है। तीसरे पद्य में मैं सब के हृदय में विद्यमान हूं यह प्रथम पाद का अर्थ है। परमात्मा की सर्वव्यापकता को खण्डन करने के लिये आपने केवल एक युक्ति दी है। जैसे—यदि परमात्मा सर्वव्यापी होता तो गीता में "श्री भगवानुवाच शब्द न होते"

सच्ची गीता पृष्ठ ७५।

अर्थात् श्री भगवान् बोले ऐसा गीता में लिखा है। यदि भगवान् सर्वव्यापक माने तो "श्री भगवानुवाच" कहना संगत नहीं होता ऐसा कथन निर्विचार कथन है। सर्वव्यापकता में हमने कई प्रमाण दिये हैं। ११वें अध्याय में जहां विशाल रूप दिखाया गया है वहां अर्जुन के शब्द देखिये—

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रम्।
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्॥

॥ श्री मद्भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक १९।

अर्थात् मैं आप को आदि, मध्य, अन्त, से रहित अनन्तसामर्थ्ययुक्त अनन्त बाहु वाला तथा चन्द्र सूर्यनेत्र, प्रदीप्त अग्नि जिन का मुख है अपने तेज से संसार को तपाते हुए देखता हूं। इस प्रमाण को देखते हुए "श्री भगवानुवाच" इस शब्द से परमात्मा सर्वव्यापक नहीं यह कैसे सिद्ध किया? जैसे आग पृथिवी में होते हुए कहीं २ रगड़ से प्रकट होती है इसी प्रकार सर्वव्यापक होने पर एक देश में प्रकट होने से विरोध नहीं "कालखात्मदिशां सर्वगतत्वं परमं महत्" इस कारिका में न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीकार भी आत्मा को व्यापक मानते हैं। इन प्रमाणों

से परमात्मा सर्वव्यापक है तथा वे अनन्त हैं ऐसा सिद्ध होता है। दादा जी ने सच्ची गीता पृष्ठ ७५ में जो लिखा है—

"अब इसी गीता शास्त्र में इन मेरे महावाक्यों का भी उल्लेख है कि मैं अव्यक्त मूर्त हूं, न मैं सारे जगत् में व्यापक हूं. न ही जगत् मुझ में व्यापक है,, यह सरासर गपौड़ा है समग्र गीता में ऐसे भाव वाला श्लोक नहीं हैं।

शब्द ज्ञान का अभाव

स्मृतिर्लब्धः "होना ही सहजयोगी बनना है।" सच्ची गीता पृष्ठ १५८

आलोचना—यहां स्मृति शब्द स्त्रीलिङ्ग है जब कि "लब्धः" पुलिंग है इन दोनों का सम्बन्ध दादा जी बताएं ? दादा लेखराज जी चारों युगों में भगवान् का एक बार अवतार मानते है देखिये—"युगे २ का अर्थ कल्प २ है या चतुर्युगे अथवा महायुगे" सच्चीगीता पृष्ठ १४७

यह प्रतीक आप श्रीमद्भगवद्गीता के "संभवामि युगे युगे" इस श्लोक से ले रहे हैं। यहाँ युग शब्द का कल्प अथवा चतुर्युग अथवा महायुग यह अर्थ आप ने लेते हुए कमाल कर दिया "युगे युगे" यहाँ वीप्सा में द्वित्व हुआ है। "नित्यवीप्सयोः" ८।१।४ यह पाणिनिजी का सूत्र है। जिस से प्रत्येक युग यह अर्थ स्पष्ट है। यदि चतुर्युग यह अर्थ विवक्षित होता तो द्वित्व की आवश्यकता ही क्या थी। इस लिए चारों युगों में एक बार ही भगवान् का अवतार होता है यह आप का कपोल कल्पित अर्थ है। और भी विरोध देखिये दादा लेखराज जी ने लिखा है "गीता का ज्ञान, मैं भगवान् शिव ने संगम युग में दिया था।"

सच्ची गीता पृष्ठ १०६

अब कलियुग में दादा लेखराज जी अपने आप को भगवान् का

अवतार लिख रहे हैं। तब चारों युग में एक बार भगवान् का अवतार होता है। यह सिद्धान्त कहां रहा? यह पूर्वापर विरोध स्पष्ट है। और कमाल देखिये—

रावण के दस सिर हर पुरुष और स्त्री में होने वाले काम क्रोधादि पांच विकार हैं। सच्ची गीता पृष्ठ ११७

आलोचना—आप ने केवल पाँच विकार लेते हुए दस संख्या कैसे बनाई यह निराला ढंग है। यदि स्त्री पुरुष के भेद से दस हैं तो प्रत्येक स्त्री के भेद से तथा प्रत्येक पुरुष के भेद से संख्या १० दस नहीं प्रत्युत बहुत दूर पहुंचेगी। इस लिये रावण के दस सिरों की संगति आप की ठीक नहीं बैठी। आप ने रावण के दस सीस सिद्ध करते हुए करोड़ों सिद्ध कर डाले अथवा रावण के सीस न होकर पाँच ही रह गये। यदि केवल सर्वसाधारण पाँच विकार लें। सो यह आप ने वही काम किया जैसा कि किसी संस्कृत कवि ने कहा है "विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्" गणेश जी को बनाते २ बन्दर की मूर्ति बना डाली। चार वेद षट्शास्त्र के ज्ञाता होने से रावण दस १० सिर वाल है ऐसा समाधान तो घट सकता है। दर्शनशास्त्र का विरोध आप का और देखिये—"मन की योग्यताओं से स्पष्ट है कि मन" आत्मा से अलग नहीं है, सच्ची गीता पृष्ठ ३६। कितनी असंगत वस्तु है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

श्री मद्भगवद् गीता में इन्द्रिय मन बुद्धि तथा आत्मा इन का स्पष्ट भेद कहा गया है। दूसरे यहाँ तर्क भी है। जैसे बाह्यज्ञान देखना, सुनना, सूंघना, इत्यादि के लिए चक्षु आदि साधनों की आवश्यकता है। उसी प्रकार अन्दर होने वाले सुख दुःखादि के प्रत्यक्ष के लिए भी

कोई साधन चाहिये। इसीलिए तर्कसंग्रहकार ने "सुखदु:खाद्युपलब्धि-साधनमिन्द्रियं मनः ॥ अर्थात् सुखदु:खादि प्रत्यक्ष के साधन इन्द्रिय को मन कहते हैं। इसी प्रकार विश्वनाथ पञ्चानन भट्टाचार्य भी—

"साक्षात्कारे सुखादीनां कारणं मन उच्यते"

न्याय सिद्धान्त मुक्तावली की इस कारिका में सुखादि प्रत्यक्ष का साधन मन को मानते हैं। आत्मा और मन को एक मानना ऐसा ही है। जैसे कुठार और बढ़ई को एक मानना, कुल्हाड़ा काटने का साधन है न कि बढ़ई। इसी तरह मन अन्दर के ज्ञान का साधन है आत्मा नहीं। व्यवहार में भी आत्मा और मन का भेद पाया जाता है! जैसे, मेरा घर, मेरा खेत, मेरा स्कूल, यहां घर खेत स्कूल मुझ से अलग हैं! इसी तरह मेरी आंख मेरा मुंह मेरा मन, यह प्रतीति आत्मा और मन को अलग २ सिद्ध करती हैं।

"मुक्ति के लिये पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं।

सच्ची गीता पृष्ठ ६२

आलोचना—यह तो प्रसिद्ध ही है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ये चार पदार्थ हैं। इन चारों में अन्तिम मोक्ष है बिना पुरुषार्थ के इन में से कोई भी पदार्थ सुलभ नहीं। विभिन्न यत्न करने पर इन में से धर्म अर्थ, अथवा काम की प्राप्ति होती है। प्रातःकाल से सायंकाल तक सौ तरह के डण्ड लोग पेलते हैं तो कृच्छ्रतया परिवार के निर्वाह के लिए कुछ द्रव्य कमा सकते हैं। मोक्ष जो इतना दुर्लभ पदार्थ है वह पुरुषार्थ के बिना कैसे प्राप्त हो सकता है। यदि पुरुषार्थ के बिना ही मुक्ति मिल सकती है। तो यह आप की शिक्षा किस लिए, और शास्त्रों का तो न सही पर सच्ची गीता आदि को भी क्यों पढ़ा जाए, योगादि अभ्यास किस लिए, । इस लिए मुक्ति के लिए पुरुषार्थ की

आवश्यकता है इसी लिए श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्विषः।
अनेकजन्मसंसिद्धिस्ततो याति परां गतिम्॥

श्रीमद्भगवद्गीता अ० ६ श्लोक ४५

प्रयत्न से योगी निष्पाप हो कर, अनेक जन्म में सिद्ध हो कर परमगति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है।

"श्री कृष्ण महाभारत युद्ध के समय नहीं हुए"

सच्ची गीता पृष्ठ ११४

आलोचना—यह आप की एक नई ही खोज है लेकिन बिना लक्षण प्रमाण के कोई भी चीज़ सिद्ध नहीं हो सकती। आप ने अपनी बात को पुष्ट करने ने लिए कोई प्रमाण नहीं दिया। पुराण तथा इतिहासों में श्री कृष्ण जी का महाभारत के युद्ध के समय में होना लिखा है परन्तु आप सत्युग में होना मानते हैं। श्री कृष्ण जी के शरीर त्याग के पश्चात् कलियुग प्रवृत्त हो गया इस विषय में हम प्रमाण देते हैं।

यस्मिन्नहनि यर्ह्येवभगवानुत्ससर्ज गाम्।
तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः॥

श्रीमद्भागवत प्रथम स्कन्ध अ० १८ श्लोक ६

जिस दिन ही श्री कृष्ण जी पृथिवी को को छोड़ कर गए तभी से पाप का प्रभव अर्थात् उत्पत्ति जिस से है वह कलियुग प्रवृत्त हुआ। अब कहिये यदि सत्युग में श्री कृष्ण जी हुए तो सत्युग के अनन्तर कलियुग कैसे प्रवृत्त हुआ। बिना प्रमाण के सिद्धि किसी वस्तु की नहीं हो सकती, यदि प्रमाण के बिना ही सिद्धि मानें तो कोई यह भी कह सकता है कि श्री कृष्ण जी हुए ही नहीं तब आप क्या उत्तर देंगे? इस लिए इतिहास पुराणादि को देखते हुए यह मानना पड़ेगा

कि श्री कृष्ण जी सत्युग में नहीं प्रत्युत पीछे हुए। और महाभारत के युद्ध समय में थे। श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान उन्होंने अर्जुन को दिया न कि दादा लेखराज जी ने। इसी लिए श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है।

> इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
> संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥

यह संजय जी भी कहते हैं कि मैं ने वासुदेव तथा पार्थ महात्मा का यह अद्भुत रोमहर्षण संवाद सुना। यहाँ वासुदेव शब्द वसुदेव से अपत्यार्थ में अण् हो कर बना है। अर्थात् "वसुदेवस्यापत्यं पुमान्" "ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च" इस पाणिनि सूत्र से अण् होकर बना है। वसुदेव जी के पुत्र श्री कृष्ण थे यह प्रसिद्ध है। इस से "गीता का ज्ञान मैंने संगम युग में दिया था।" यह सच्ची गीता का लेख भी कट गया महाभारत युद्ध समय श्री कृष्ण जी थे। और उन्होंने गीता का ज्ञान अर्जुन को दिया यह श्रीमद्भगवद्गीता से ही सिद्ध है। दादा जी ने अपनी पुष्टि के लिए गीता जी को अपनाया है। इस लिए हम वहीं का प्रमाण अधिकांश आप को दे रहे हैं। आप के दिये गीता के उद्धरण प्रमाण हों हमारे न हों यह अर्धजरतीय न्याय होगा। एक और दादा जी का सिद्धान्त देखिये श्री मद्भगवद्गीता तथा सच्चीगीता का कर्ता भिन्न २ है। दादा जी तथा उनके शिष्य ध्यान दें।

१. संगम युग में गीता का ज्ञान आप ने किस भाषा में दिया ?

२. यदि सच्चीगीता की तरह हिन्दी तथा अंग्रेजी में तो उस समय भारत में अंग्रेजी नहीं थी। अंग्रेजी का प्रचार भारत में अंग्रेजों के आने से हुआ। आपने अंग्रेजी कैसे लिखी।

३. यदि तीन काल का ज्ञान होने से तो बताइये उस का अनुवाद संस्कृत में किसने किया।

४. यदि उस समय संस्कृत में किया तो इस समय हिन्दी अंग्रेजी प्रचलित होने से, हिन्दी अंग्रेजी में तो बताइये दोनों गीताओं के सिद्धान्त मेल क्यों नहीं खाते ?

५. श्री मद्भगवद्गीता कर्तव्य अकर्तव्य में शास्त्र को प्रमाण मानती है। जैसे "तस्मच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ" सच्ची गीता वेद शास्त्र को नगण्य मानती है यह विषमता क्यों ?

वत्सो सर्वव्यापकता के कारण नहीं बल्कि मैं अपने आध्यात्मिक बल से सब कुछ जानता हूं। मैं भूत वर्त्तमान के अतिरिक्त भविष्य को भी जानता हूँ।

सच्ची गीता पृष्ठ ७६

आलोचना—कितना असङ्गत कथन है। आप के विचारों को देखते हुए, वेद शास्त्र पुराण इतिहास भूगोल इन से विपरीत आप का प्रचार देखते हुए कौन बुद्धिमान् यह मान सकता है कि आप को तीन काल का ज्ञान है। आप का ज्ञान तो भूत तथा वर्त्तमान का भी सर्वथा असङ्गत प्रतीत हो रहा है। भविष्यत् का तो कहना ही क्या !

"मैं योगेश्वर तो परमधाम से अवतरित होता हूं। और एक वृद्ध मनुष्य के तन में, कलियुग के अन्त में, जब कि उस मनुष्यत्मा का चौरासिवां जन्म होता है, प्रवेश होता हूं।

सच्चीगीता पृष्ठ ५१

आलोचना—यह आप ने अच्छी प्रकार स्पष्ट नहीं किया कि साधारण वृद्ध के तन में प्रवेश आत्मा ने क्यों किया। किसी बच्चे अथवा नौजवान के शरीर में प्रवेश क्यों नहीं किया। नौजवान में घूमने की, बोलने की, प्रचार की, सोचने की सब शक्ति वृद्ध की अपेक्षा अधिक है। क्या कारण है कि परमात्मा वृद्ध तन में प्रवेश करता है नौजवान के

नहीं ? यदि वृद्ध में ज्ञान की अधिकता के कारण प्रवेश है तो क्या परमात्मा कम बुद्धि का है ? यदि ब्रह्मकुमारों का परमात्मा ऐसा है तो वह कल्याणकारी नहीं हो सकता। यह केवल आप ने अपना उल्लू सीधा करने के लिए कहा है।

"मनुष्यात्माएं पशुयोनि में जन्म नहीं ले सकतीं इसी प्रकार पशु भी मनुष्य योनि में जन्म नहीं ले सकते क्योंकि ऐसा नियम ही नहीं है।

सच्चीगीता पृष्ठ १२६

मनुष्य चाहे कितना ही घोर से घोर पाप करे और मनुष्य ही बनता चला जाए यह कहां का न्याय है ? "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्" यह गरुड़ पुराण का लेख है। शुभ अथवा अशुभ जो कर्म है वह अवश्य भोगना पड़ता है "नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि" (गरुड़ पुराण) बिना भोगे सैंकड़ों कल्प बीतने पर भी कर्म क्षीण नहीं होता। बुरे कर्म से मनुष्य को कीट पतङ्ग तो क्या स्थावर योनि तक में जाना पड़ता है। जैसे—

"गुरुं हूं कृत्य तुं कृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः।
श्मशाने जायते वृक्षः कङ्कगृध्रोपसेवितः॥

इस पद्य में मनुष्य का श्मशान में वृक्ष बनना वर्णित है।

आधा समय सुख और आधा समय दुःख प्रत्येक आत्मा भोगती है अर्थात् दादा लेखराज जी के अनुसार सृष्टिकाल ५००० वर्ष है और आत्मा २५०० वर्ष दुःख भोगती है और २५०० वर्ष सुख—"परन्तु मैं ने आप को समझाया है कि मनुष्यात्माओं के दुःख का काल अधिकाधिक २५०० वर्ष है और सुख के समय के बराबर है"।

सच्ची गीता पृष्ठ १३६

यह कहना कितना बुद्धू बनाना है। यह नियम प्रत्यक्ष विरुद्ध है

कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो जीवन भर आनन्द उड़ाते हैं कुछ जीवन भर दुःखी रहते हैं। तब यह कैसे मान सकते हैं कि प्रत्येक आत्मा आधा समय सुख भोगती है आधा समय दुःख। एक मनुष्य निरन्तर शुभ कर्म करने वाला है क्या कारण है कि वह आधा समय दुःख भोगे। यदि यही बात है तो अच्छा और बुरा कर्म करने वाले में क्या अन्तर रहा। इस लिए यह आप का अनर्गल जल्पन है। दुःख सुख आधे २ समय तक भोगना पड़ेगा। बिना पुरुषार्थ के मुक्ति आप के सिद्धान्त के अनुसार मिल जाती है तब कहिये दादा जी आप का प्रचार लोगों को फंसाने के लिए नहीं तो और किस लिए है। "५००० वर्ष कल्पान्त"

सच्ची गीता पृष्ठ १३७

आप के विचार से सृष्टि को चले हुए केवल ५००० वर्ष हुये हैं। १२५० वर्ष हर एक युग का समय आप मानते हैं इस के विपरीत मुझ से पूर्व समालोचकों ने इतिहास तथा विज्ञान के प्रमाण दिये हैं। हम पिष्टपेषण नहीं करना चाहते। तो भी कुछ प्रमाण इस विषय में देते हैं।

तद्द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्।
सूर्याब्दसंख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतैः॥

सूर्य सिद्धान्त अध्याय १ श्लोक १५

१२००० दिव्य वर्षों का चतुर्युग है जिस के सौर वर्ष ४३२०००० हैं। यह सन्ध्या सन्ध्यांश सहित काल है। आगे प्रत्येक युग के वर्षों का विवरण भी उसी ग्रन्थ में मिलता है।

युगस्य दशमोभागश्चतुस्त्रिद्व्येकसंगुणः।
क्रमात् कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्ध्ययोः स्वकः॥

सूर्य सिद्धान्त अध्याय १ श्लोक १७

ऊपर कही संख्या को १० का भाग दे कर क्रमशः चार दो तीन

था एक से गुणा करने पर सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन का समय निकल आता है।

सतयुग—१७२८०००
त्रेता —१२९६०००
द्वापर—८६४०००
कलियुग—४३२०००
योग =४३२००००

इस प्रकार जो चारों युगों की संख्या कही थी वह पूरी हो जाती है। युगों को अधिक न्यून वर्ष क्यों मिले इसके विषय में भी सूर्यसिद्धान्त जो गणित ज्योतिष का श्रेष्ठ ग्रन्थ है उस में लिखा है—

"कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया" अर्थात् सत्य आदि चारों चरण धर्म के सतयुग में होते हैं। इस लिए उसे अधिक समय; त्रेता में तीन चरण, द्वापर में दो, और कलियुग में एक चरण धर्म का होता है। इस लिए उस का समय सब से थोड़ा है। हर एक युग १२५० वर्ष का होता है और चारों युग ५००० वर्ष के हों यह बात किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं होती। मुझ से पूर्व समालोचकों ने ५००० वर्ष से अधिक समय सिद्ध करने के लिये ऐतिहासकों तथा वैज्ञानिकों के प्रमाण दिए हैं। इतिहास के अनुसार ५००० से अधिक समय महाभारत के युद्ध को हुए हो चुका है। आप का सिद्धान्त सर्वथा निराधार तथा कपोल कल्पित है। यह चतुर्युग का मान जो बढ़ा इस का उत्तर दादा लेखराज तथा उनके शिष्यों को सोचना चाहिये। अन्यथा वेदशास्त्रसम्मत चतुर्युग मान स्वीकार करना चाहिये। शास्त्रों में चार युगों का ही नाम है परन्तु आप ने जो सङ्गम युग लिखा जैसे—"गीता का ज्ञान मैं भगवान् शिव ने सङ्गम युग में दिया था" यह सङ्गम युग क्या है? यह आप ने कहीं पर नहीं लिखा। यदि आप

पांचवां सङ्गम युग भी स्वीकार करते हैं तो उस का भी कुछ समय होगा। इस स्थिति में जो आप ने सृष्टि की स्थिति का समय कुल ५००० वर्ष लिखा है वह खण्डित हो जायेगा।

महात्मागान्धी जी जैसे व्यक्ति को आप अपवित्र समझते हैं। देखिये "महात्मागान्धी तो स्वयं ही सम्पूर्णतया पवित्र न थे। जिस ज्ञान और योग द्वारा मैं मनुष्यों को मनोविकारों पर विजय प्राप्त करने योग्य बनाता हूं गान्धी जी तो उस से परिचित ही न थे।

सच्ची गीता पृष्ठ १२०

कितना अहंकार पूर्ण लेख है। जिन महात्मा जी का भारत वर्ष ही नहीं दूसरे देश भी मान करते हैं वे महात्मा जी भी आप की दृष्टि में पवित्र नहीं कितना असम्बद्ध प्रलाप है। जिस व्यक्ति को वेद, उपनिषद्, दर्शन, व्याकरण, इतिहास, भूगोल, आदि किसी भी विषय का ज्ञान न हो और वह श्री मद्भगवद्गीता का ज्ञान देने वाला अपने आप को कहे यह सरासर भोले भाले वेदशास्त्र से अपरिचित लोगों को फंसाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं। श्री गीता जी में वेद उपनिषदों का सार योगेश्वर श्री कृष्ण जी ने कूट २ कर भरा है, उस गीता का उपदेष्टा इतना अनपढ़ जिसे सामान्य शब्दों का ज्ञान न हो, वह कैसे हो सकता है। जिस धर्म में तर्क का अभाव है वह धर्म ही नहीं है। जैसे मनु जी ने कहा है—

"यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेत्तिनेतरः" जो तर्क से खोज करता है वह ही धर्म को जानता है। ब्रह्मकुमारीमत, लक्षण, प्रमाण, युक्ति, तर्क, आदि से रहित है इस लिये समझदार व्यक्तियों को इस के विषय में परिचित तथा सावधान होना चाहिये। इसी प्रकार इस मत के शेष सिद्धान्त भी निराधार हैं। इस प्रकार के दम्भों से वेद तथा शास्त्रादि-

सम्मत मार्ग दूषित नहीं हो सकता। कितने ही ऐसे मतों का उत्थान हो रहता है परन्तु वह वेदशास्त्रानुसारी धर्म प्रभु-कृपा से धारा-प्रवाह रहा है। कहा भी है—

सचाई छुप नहीं सकती बनावट के असूलों से।
कि खुशबू आ नहीं सकती कभी कागज़ के फूलों से॥

यद्यपि इस विषय में बहुत लिखा जा सकता है परन्तु पूर्व और महानुभावों ने इस विषय में बहुत कुछ लिखा हैं। हम ने भी स्वबुद्धि अनुसार विचारार्थ कुछ बातें जनता के सन्मुख रखने का प्रयत्न किया है। हमारा लक्ष्य केवल सत्यासत्य का निर्णय है, ग्रन्थ का विस्तार नहीं। बुद्धिमानों के लिए इसारा ही काफ़ी है। आशा है जनता तत्त्व को समझते हुए वेदशास्त्र सम्मत मार्ग पर चल कर कल्याण प्राप्त करेगी।

इतना लिखने के पश्चात् अपने लेख को समाप्त करता हूं।

ओ३म् शर्मा

आर्य ... नी